सत्ता के पक्ष में रचा गया 'चक्रव्यूह'

पिछले कुछ समय से प्रकाश झा की फिल्म 'चक्रव्यूह' को लेकर पत्र-पत्रिकाओं में काफी कुछ छप रहा था। फिल्म समीक्षक उसे चार सितारे प्रदान कर रहे थे। पहली बार कोई नामी-गिरामी निर्देशक नक्सलवाद पर फिल्म बनाने का जोखिम उठा रहा था तो दूसरे कई लोगों की तरह मुझे भी फिल्म को लेकर काफी उत्सुकता थी। किसी का साथ न मिलते हुए भी मैं अकेले ही इसे देखने चला गया। सच तो यह है कि फिल्म की कहानी ने मुझे अकेलेपन का एहसास होने भी नहीं दिया। फिल्म को देखने से पहले मेरे दिमाग में सवाल था कि प्रकाश झा नक्सलवाद या नक्सलवादियों के बारे में मेरी जानकारी में क्या नया जोड़ पाते हैं? वे इतने विस्तृत तथा चुनौतीपूर्ण विषय को कहानी में कैसे गूंथते हैं? वे मनोरंजन तथा यथार्थ के बीच कैसे सामंजस्य बिठाते हैं? जब एक साथ कई लोग मिलकर हिन्दी सिनेमा को कचरा बनाने में लगे हों। दर्शकों का सौंदर्यबोध तथा समझ बढ़ाने की जगह किसी भी तरह से ज्यादा से ज्यादा रुपया कमाने की होड़ मची हो। ऐसे माहौल में प्रकाश झा का इस गंभीर विषय पर फिल्म बनाना एक बेहद पतली रस्सी पर चलने जैसा था। फिल्म देखने के बाद मेरे पहले प्रश्न के जवाब में फिल्म नक्सलवादियों के बारे में मेरी या मीडिया पर नजर रखने वाले आम आदमी की जानकारी में नया कुछ नहीं जोड़ पाती। यानी वह किसी 'इनसाइड स्टोरी' या 'एक्सक्लूसिव' जानकारी से हमें समृद्ध नहीं कर पाती। जिस तरह राजकपूर की 'राम तेरी गंगा मैली' समाज तथा राजनीति में फैलते जा रहे मैल को परत दर परत उधेडती जाती है या महेश भट्ट अपने पतन से पहले सारांश, नाम तथा जख्म में क्रम से व्यवस्था की सड़ांध, विदेश जाकर कामयाब होने के भ्रम और सांप्रदायिकता जैसे विषयों की गहराई में जाकर उन्हें परदे पर उतारने में सफल हुए थे। उस गहराई तक चक्रव्यूह नहीं जा पाई है। यह पिछले कुछ वर्षों में घटी घटनाओं को दुहराती है। दूसरी जिज्ञासा मुझे थी कि इतने वृहत विषय को कहानी में कैसे गूंथते हैं या कहानी कैसे कहते हैं? तो मैं कह सकता हूं कि उन्होंने सारी घटनाओं को कहानी में कुशलता से गूंथा है। वे यथार्थ के चित्रण से लेकर, कहानी की रोचकता को बनाए रखने में सफल रहे हैं। दर्शक कहानी से जुड़ाव महसूस करता है। फिल्म के घटनाक्रम अपने तार्किक मुकाम की ओर बढ़ते चले गये हैं। वे मुम्बईया फिल्मों के अर्थ में यथार्थ या मनोरंजन का सामंजस्य जमाने में भी सफल रहे हैं। इस मामले में वे राजकपूर की याद दिलाते हैं, जो हर बार किसी सामाजिक विषय को अपनी फिल्म का विषय बनाते थे और अर्थपूर्ण तथा व्यवसायिक सिनेमा में एक अद्भुत सामंजस्य प्रस्तुंत करते थे।

विभिन्न पत्र- पत्रिकाओं को इस फिल्म के सिलसिले में दिए गए इंटरव्यू में प्रकाश झा दो बातों का जिक्र करना नहीं भूल रहे थे। एक, उन्होंने फिल्म तटस्थ होकर बनाई है यानी नक्सलियों तथा राज्य किसी का पक्ष नहीं लिया है। दूसरी बात वे कह रहे थे कि उन्होंने इस विषय पर काफी रिसर्च किया है और वे काफी समय से इस विषय पर काम कर रहे थे। यह कहते हुए प्रकाश झा एक बुनियादी बात भूल रहे थे कि तटस्थता जैसी कोई चीज नहीं होती। आदमी या तो इस ओर खड़ा होता है या उस ओर। आप कहेंगे यह बीच की रेखा में भी खड़ा हो सकता है तो हमारा कहना यह है कि बीच की विभाजक रेखा इतनी पतली होती है कि आप उस पर खड़े ही नहीं हो सकते। आप किसी न किसी पाले में चले ही जाते हैं। प्रकाश झा भी इस फिल्म में सत्ता के पाले में बैठे हुए नज़र आते हैं। उनकी रिसर्च वाली बात में कोई दम नजर नहीं आता। जैसा कि हमने पहले भी कहा है कि उन्होंने पिछले कुछ वर्षों में घटी घटनाओं को फिल्म का आधार बनाया है, जिसमें कोबड गांधी की गिरफ्तारी, दंतेवाड़ा का भीषण नरसंहार जिसमें सीआरपीएफ के 76 जवान मारे गये थे। सेज के खिलाफ कोटेश्व राय का आंदोलन। दंतेवाड़ा तथा जगदलपुर के आसपास टाटा तथा एम्सार के संयंत्रों हेतु जमीन अधिग्रहण के खिलाफ संघर्ष प्रमुख हैं। तो प्रकाश झा ने वर्षों तक फिल्म के किस पहलू के लिए रिसर्च की? फिल्म देखने से साफ लगता है कि उन्होंने फिल्म की कहानी बनाने तथा किरदारों को गढने में मेहनत की है, जो हर मुम्बईया फिल्मकार करता है।

फिल्म की कहानी साथ पढे हुए तीन दोस्तों तथा चार प्रमुख माओवादी चरित्रों के इर्द-गिर्द बुनी गयी है। आदिल (अर्जुन रामपाल), उसकी पत्नी रिया मेनन (ईषा गुप्ता) तथा उनका दोस्त कबीर (अभय देओल) साथ-साथ आईपीएस में चुने जाते हैं। आदिल तथा रिया मेनन जहां अपने कैरियर को लेकर गंभीर हैं, वहीं कबीर मस्तमौला किस्म का व्यक्ति है, वह अन्याय बर्दाश्त नहीं कर पाता तथा आईपीएस की ट्रेनिंग के दौरान वहां के अफसरों से झगड़ा करके उसे बीच में छोड़कर लौट जाता है। आदिल उससे इस बात पर नाराज रहता है। आदिल किसी शांत सी जगह में अपनी पत्नी के साथ आराम से नौकरी कर रहा था। उसे अपने उच्चधिकारियों के द्वारा नक्सली इलाके में जाने की पेशकश मिलती है तो उसे वह स्वीकार कर लेता है, जबकि उससे इस निर्णय का उसकी पत्नी रिया तथा वर्षों बाद उससे मिलने आया दोस्त कबीर विरोध करता है। लेकिन आदिल नक्सल प्रभावित क्षेत्र में जाता है और वहां की समस्याओं तथा चुनौतियों से रूबरू होता है। वह वहां के लागों के बीच पुलिस के बारे में फैली गलत धारणाओं को प्यार का मरहम लगाकर दूर करने की कोशिश करता है। तब हमारा परिचय नक्सली किरदारों राजन (मनोज वाजपेयी), गोविंद सूर्यवंशी (ओमपुरी), और जूही (अंजलि पाटिल) से होता है। मगर आदिल सफल नहीं हो पाता है। एक हमले में वह बुरी तरह घायल

सीमित संसाधनों के होते हुए जिस तरह से नक्सलियों ने राज्य के समक्ष चुनौती प्रस्तुत की है, उस नजरिए से उन्हें हारा हुआ नहीं कहा जा सकता। उस्ताद राशिद खान की आवाज में 'अइयो पियाजी' गीत दिल की गहराइयों तक असर डालता है। 'महंगाई' पिपली लाईव के 'महंगाई डायन' गाने की याद दिलाता है। ऐसा लगता है कि फिल्मकार इस बीच बेतहाशा बढ़ चुकी महंगाई को भी भुना लेने के मूड में है, लेकिन यह गीत विशेष असर नहीं छोड़ पाता है। 'कुंडा खोल' आयटम सांग है, जिसको फिल्म में चवन्नी छाप दर्शकों को खुश रखने के नजरिये से रखा गया है। यह गीत उसी तरह खटकता है, जिस प्रकार से एसपी आदिल की काले रंग की एसयूवी जिस पर वे हर समय सवार नजर आते हैं चाहे उनको ऑफिस जाना हो या किसी खतरनाक ऑपरेशन में।

हो जाता है। वह गुस्से में असहाय सा नजर आता है। उसी दौरान उससे मिलने पहुंचा उसका दोस्त कबीर उसकी परेशानी में उसकी सहायता करने का इरादा व्यक्त करता है। वह बड़े ही कन्वेन्शिग तरीके से नक्सलवादियों के बीच में शामिल हो जाता है। शुरूआत में वह आदिल से संपर्क बनाये रखता है। इस दौरान वह नक्सल कमांडर जूही के काफी निकट आ जाता है। उधर आदिवासियों को जमीन से बेदखल करने तथा पुलिसिया अत्याचार को देखते हुए कबीर नक्सलियों से जुड़ाव महसूस करने लगता है। एक बार वह आदिल को बचाने के लिए राजन को गोली मार देता है। लेकिन एक समय ऐसा आता है, जब वह आदिल से आदिवासियों को उजाड़े जाने में सहायता करने को कहता है। आदिल आदिवासियों के घर उजाड़ रहे सेना के लोगों को रोकता है। लेकिन अब तक कबीर नक्सलियों के तर्क को पूरी तरह से समझ चुका था और वह आदिल के खिलाफ खड़ा हो जाता है। आदिल की सेवाओं को देखते हुए उसकी पत्नी रिया को भी गुप्तचर विभाग का डायरेक्टर बनाकर वहां भेज दिया जाता है। राजन तथा गोविंद सूर्यवंशी को छुड़ाने के लिये कबीर तथा उसके साथी नक्सली मेदांता के बेटे आदित्य को किडनैप कर लेते हैं। इसी बीच कबीर तथा नक्सलवादियों के बीच गलतफहमी पैदा करने के लिए आदिल उसके साथ अपनी दोस्ती की खबरें अखबारों में प्रसारित करवा देता है। कबीर नक्सलियों को यकीन दिलाता है कि वह आदिल का दोस्त जब था तब था अब तो वह नक्सल हो चुका है। गोविंद उसे क्लीन चिट दे देते हैं। राजन को छोड़ने के साथ रिया उसके घाव में एक इलेक्ट्रानिक चिप लगा देती है, जिसके जरिये उनकी लोकेशन का उन्हें पता लगता रहता है। कबीर बी. टेक. किया हुआ है। वह गड़बड़ को समझ जाता है और खुद उस चिप को लेकर राजन तथा अन्य लोगों को वहां से निकल जाने को कहता है। वह अकेले ही पुलिस तथा सुरक्षा बलों सें जूझता है। आदिल तथा कबीर में गुत्थमगुत्था होती है, तभी जूही आकर कबीर को बचाने का प्रयास करती है। लेकिन पुलिस तथा सुरक्षा बलों के जबरदस्त घेरे के आगे वे मजबूर हो जाते हैं। जूही मारी जाती है। कबीर उर्फ आजाद से आदिल समर्पण करने को कहता है, मगर वह लड़ने के लिए अपनी बंदूक उठाना चाहता है कि रिया उसे गोली मार देती है। इस प्रकार अपनों के द्वारा अपने का खून हो जाता है।

यह अंत बड़ा ही मार्मिक तथा प्रतीकात्मक है। निर्देशक दिखाना चाहता है कि कुछ लोगों के स्वार्थ के लिये देश के लोगों को आपस में खून बहाना पड़ रहा है। कबीर और जूही की मौत के साथ फिल्म खत्म नहीं होती, बल्कि नक्सलवादियों की विशाल सेना को कूच करते हुए दिखाया जाता है। पृष्ठभूमि से आवाज आती है कि आजाद और जूही ने राजन तथा गोविन्दजी को बचाकर संगठन को बचा लिया। देश के कई जिलों तथा राज्यों में नक्सलवाद का असर है। भूमि के असमान वितरण तथा गरीबों-आदिवासियों की सुध न लेने की वजह से यह सब हो रहा है। फिल्म आदिल के जरिये बार-बार यह संदेश देने की कोशिश भी करती है कि हिंसा से समस्या का समाधान नहीं निकल सकता है। आदिल गांव वालों से प्रश्न भी करता है कि जो राज बंदूक के जरिए आएगा, वह चलेगा भी बंदूक के दम पर। ऐसे में उन समस्याओं का क्या होगा जिनसे निपटने की जरूरत के लिए वह आंदोलन चल रहा है? फिल्म विकास की उस अवधारणा पर भी चोट करती है, जिसका उद्देश्य जनता को झूठे सपने दिखाकर संसाधनों की लूट मात्र है। इस लूट के लिए पूंजीपतियों और राजनेताओं के गठजोड़ के साथ पूंजीपतियों के द्वारा शांति-व्यवस्था की शर्त पर निवेश की बात करके देश के ऊप बनाए जाने वाले दबाव को फिल्म में दिखाया गया है। लेकिन फिल्मकार ने तटस्थ रहने की बात करते हुए भी आदिल के पात्र का पक्ष अधिक लिया है। जितनी कुशलता से उसने उसके अन्तरंग तथा बहिरंग को उभारा है, उतना महत्व कबीर के किरदार को नहीं दिया गया है। कबीर जब भी सामने आता है तो वह जूही या राजन जैसे किसी माओवादी के साथ होता है। नक्सलवादियों के बीच में जाने के बावजूद उन कारणों को फिल्म स्पष्ट नहीं कर पाती जिनकी वजह से वह उनके पक्ष में खड़ा हो जाता है। राजन के किरदार में बहुत अधिक संभावना न होते हुए भी मनोज वाजपेयी अपना असर छोड़ पाने में सफल होते हैं। इसी प्रकार जूही के रूप में अंजलि पाटिल ने बहुत बढ़िया काम किया है। वही बहुत अधिक संभावनाशील तथा आकर्षक किरदार होते हुए भी कबीर को अभय देओल उन ऊंचाइयों तक नहीं पहुंचा पाये जो उसका प्राप्त था, हालांकि इसकी एक बहुत बड़ी वजह कहानीकार के द्वारा अपनी कहानी कहने के लिए उसे कठपुतली में बदल देना भी है। अगर यही किरदार मनोज वाजपेयी को दिया गया होता तो फिल्म का असर देखने लायक होता। लेकिन किसी के न हारने की बात करते हुए भी फिल्मकार ने कबीर को हारते हुए दिखाया है। कबीर की हार एक तरह से उसकी विचारधारा की हार है, जबकि फिल्मकार तटस्थता की बात करता है। फिल्म को ध्यान से देखने पर एक बात साफ हो जाती है कि फिल्मकार राज्य के साथ खड़ा है। अंत में बहुत जोर-शोर से नक्सलियों के पक्ष में कमेंटरी करते हुए भी कबीर और जूही को मरते हुए दिखाकर वह नक्सलियों को उनके अंजाम की चेतावनी देता हुआ लगता है। उसे नक्सलियों की हिंसा नजर आती है, लेकिन सिस्टम की हिंसा को वह न्यायसंगत ठहराता है। प्रकाश झा ने अपने कई साक्षात्कारों में कहा है कि उन्हें समस्या का समाधान नहीं मालूम जबकि वे आदिल की जीत दिखाते हुए सरकारी नीति का पक्ष लेते हुए साफ नजर आते हैं। यह तब है जबकि अभी तक की लड़ाई में राज्य जीता नहीं है। सीमित संसाधनों के होते हुए जिस तरह से नक्सलियों ने राज्य के समक्ष चुनौती प्रस्तुत की है, उस नजरिए से उन्हें हारा हुआ नहीं कहा जा सकता। उस्ताद राशिद खान की आवाज में 'अइयो पियाजी' गीत दिल की गहराइयों तक असर डालता है। 'महंगाई' पिपली लाईव के 'महंगाई डायन' गाने की याद दिलाता है। ऐसा लगता है कि फिल्मकार इस बीच बेतहाशा बढ़ चुकी महंगाई को भी भुना लेने के मूड में है, लेकिन यह गीत विशेष असर नहीं छोड़ पाता है। 'कुंडा खोल' आयटम सांग है, जिसको फिल्म में चवन्नी छाप दर्शकों को खुश रखने के नजरिये से रखा गया है। यह गीत उसी तरह खटकता है, जिस प्रकार से एसपी आदिल की काले रंग की एसयूवी जिस पर वे हर समय सवार नजर आते हैं चाहे उनको ऑफिस जाना हो या किसी खतरनाक ऑपरेशन में। ऐसा लगता है, जैसे आदिल के पिता ने यह गाड़ी उसे भेंट में दी है और वह एक मचलते हुए नौजवान की तरह सरकारी गाड़ी से चलने के बजाय एक जानी-मानी कंपनी की एसयूवी में चलता है। फिल्म में कई मौकों पर फिल्मकार ने आदिल के माध्यम से सरकार की बात को रखा है, उन अवसरों पर फिल्म डॉक्यूमेंट्री सी हो गई है। समस्या प्रधान विषय पर बनायी गयी इस फिल्म की सबसे बड़ी समस्या यह है कि यह समाधान के लिए सरकार के एजेंडे को आगे रखती है, जिससे इन पैंसठ सालों में कोई रास्ता निकल नहीं पाया है तो आगे क्या निकलेगा।

-दिनेश कर्नाटक